International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 25-02-2022, Accepted: 10-03-2022, Published: 26-03-2022
Volume 4, Issue 1, 2022, Page No. 21-23

आधे–अधूरेः पारिवारिक जीवन की त्रासदी

मीनाक्षी
सहायक प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, माता सुंदरी कॉलेज ऑफ वूमेन, दिल्ली, भारत

सारांश
आधुनिक और यथार्थवादी भाव संवेदना से युक्त मोहन राकेश कृत नाटक 'आधे अधूरे' समसामयिक जिंदगी का दस्तावेज है। इस नाटक में वर्तमान समकालीन जीवन की विसंगतियों और आधुनिक मानव की नियति और उसके अस्तित्व के संकट को दिखाया गया है। एक स्तर पर यह नाटक स्त्री–पुरुष संबंधों के तनाव और बिखराव को रेखांकित करता है तो दूसरी तरफ इसमें मध्यवित्तीय स्तर से निम्न मध्यवित्तीय स्तर पर आते हुए शहरी परिवार का विघटन होते हुए दिखाया गया है। 'समूचा नाटक घर और घर में रहने वाले लोगों के अधूरेपन की कथा व्यंजित करता है।
वह घर ऐसा है, जो घर के अतिरिक्त सब कुछ है क्योंकि वहां घर नामक शब्द के अस्तित्व में सम्पृक्त अपनेपन के स्थान पर अनचाहे संबंधों का बिखराव और ऊबभरे व्यवहार की गर्द है। आधे–अधूरे नाटक की सर्जना का मूल बिंदु घर की तलाश है।' घर गृहस्थी बसाने के लिए जिस समन्वय और सहयोग की अपेक्षा होती है। इस नाटक में इनका सर्वथा अभाव दिखता है।

मूल शब्दः अधूरापन, बिखराव, गर्द, हवा, त्रासदी, व्यक्तित्व की सार्थकता, विसंगति।

प्रस्तावना

इस नाटक का कथानक किसी व्यक्ति विशेष अथवा परिवार का न होकर किसी भी व्यक्ति अथवा परिवार का हो सकता है। इस नाटक के पात्र आधे और अधूरे हैं। उदाहरण के लिए ओम शिवपुरी के शब्दों में– "यह आलेख एक स्तर पर स्त्री–पुरुष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज है। महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है। सावित्री भी उसे चाहती रही होगी, लेकिन ब्याह के बाद महेन्द्रनाथ को बहुत निकट से जानने पर उसे उससे वितृष्णा होने लगी क्योंकि जीवन से सावित्री की अपेक्षाएं बहुमुखी और अनन्त है। अब महेन्द्रनाथ की बेकारी की हालत में सावित्री बहुत कटु हो गई है। एक ओर घर को चलाने का असह्य बोझ है, तो दूसरी ओर जिंदगी में कुछ भी हासिल न कर पाने की तीखी कचोट। अपने बच्चों के बर्ताव से अत्यंत तिक्त हुई सावित्री बची–खुची जिंदगी को ही पूरे, सम्पूर्ण पुरुष के साथ बिताने की आकांक्षा रखती है। पर यह आकांक्षा पूरी नहीं हो पाती, क्योंकि सम्पूर्णता की तलाश ही शायद वाजिब नहीं।"[1] सावित्री की आत्मिक प्रवृतियाँ, मानसिक स्थिति, मनोवृत्ति और अति महत्वाकांक्षा ही इसके लिए जिम्मेदार है। वह अपने अस्तित्व की खोज दूसरी वस्तुओं, व्यक्तियों और अतिभौतिकता में करती हैं। वह निरंतर किसी न किसी विकल्प की खोज में लगी रहती है। लेकिन कोई स्थायी विकल्प खोज नहीं पाती और अंततः हार जाती है और विकल्पहीन होकर निराशा, कुंठा, कड़वाट, अतृप्ति एवं अभाव में जीने को विवश हो जाती है। नाटक के सभी पात्र किसी न किसी स्तर पर कुंठित और मानवीय गुणों से दूर हैं। ओम शिवपुरी के शब्दों में– "एक अन्य स्तर पर यह नाट्य रचना मानवीय संतोष के अधूरेपन का रेखांकन है। जो जिंदगी से बहुत कुछ चाहते हैं, उनकी तृप्ति अधूरी ही रहती है। महेन्द्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा ये अलग–अलग गुणों के चार पुरुष हैं। चुनाव के एक क्षण में सावित्री ने महेन्द्रनाथ के साथ गांठ बांध ली और आगे चलकर अपने को भरा–पूरा महसूस नहीं किया। लेकिन अगर वह महेन्द्रनाथ की बजाय जगमोहन से रिश्ता जोड़ती, तब भी अनुभूति वही रहती, क्योंकि तब जगमोहन में जुनेजा के गुण नहीं मिलते और इस तरह यह दुष्चक्र चलता ही रहता है।"[2] यही आधुनिक मानवीय जीवन की त्रासदी और विडम्बना है। यही नकारात्मक रवैया उनके आपसी संबंधों पर असर डालता है। इस प्रकार वह नारकीय परिस्थितियों में जीवन जीने को मजबूर है। ऐसा लगता है कि उनका विवेक कहीं खो चुका है। उन्हें अपने लिए उचित–अनुचित का कोई ज्ञान नहीं होता। वे एक–दूसरे के साथ लगातार अनुचित आचरण और व्यवहार करते हैं। वे पूरी तरह आत्म–केन्द्रित पात्र हैं।
आधे अधूरे नाटक के पात्र अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व की सार्थकता को तलाशते हैं। वर्तमान समय और समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इसी सार्थकता को ढूंढना पड़ता है। आधुनिक और जर्जर व्यक्ति का प्रतीक महेन्द्रनाथ नामक पात्र है, जो पराजित, ख़ोखला, कुंठित, पलायनवादी और बीमार है। वह आर्थिक तंगी का शिकार होता है। उसका बिजनेस डूब चुका है। वह आर्थिक रूप से अपनी पत्नी सावित्री पर पूरी तरह निर्भर हो जाता है। इसी कारण सावित्री उसे दब्बू, निकम्मा, नकारा, लिजलिजा और रबड़ स्टैम्प आदि कहती है। अपने पति को अधूरा जानकर वह सम्पूर्ण व्यक्ति की खोज करने का प्रयत्न करती है। वह भी भटकती ही रहती है। 'आधे–अधूरे सावित्री की कथा है। सावित्री भी आम औरतों की तरह एक ऐसे घर की कल्पना करती है, जिसे वह अपना कह सके। एक आदमी जब घर बसाता है, तो इसलिए कि वह अपनी उस एक जरूरत को पूरा कर सके जो उसके अपने अंदर के किसी अधूरेपन को भर सके।'[3] इस नाटक के केन्द्र में पुरुष न होकर नारी है। पुरुष उपार्जन नहीं कर पाता इसीलिए उसका घर–परिवार में महत्व भी नहीं है।
सावित्री कामकाजी होने के साथ–साथ परिवार की जिम्मेदारियाँ भी संभाल रही है। 'स्त्री कई कुछ संभाले बाहर से आती है। कई कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का, कुछ अपना। चेहरे पर दिन भर के काम की थकान है और इतनी चीजों

के साथ चलकर आने की उलझन।'[4] यह थकान सिर्फ आर्थिक पक्ष को सुदृढ़ करने की नहीं बल्कि जीवन के हर पहलू की है। घर के हर सदस्य के साथ उसके सम्बन्ध ठीक नहीं है। यही थकावट सावित्री के हर काम से पता चलती है। उदाहरण के लिए 'स्त्री (थकान निकालने के स्वर में) ओह् होह्.... (कुछ तलाश भाव से) फिर घर में कोई नहीं (अंदर के दरवाजे की तरफ देखकर) किन्नी!... होगी ही नहीं, जवाब कहाँ से दे?.... पाजामे को मरे जानवर की तरह उठाकर देखती है और कोने में फेंकने को होकर फिर एक झटके के साथ उसे तहाने लगती है। दिन भर घर पर रहकर आदमी और कुछ नहीं, तो अपने कपड़े तो ठिकाने से रख ही सकता है।'[5]

वह परिवार में आर्थिक सुदृढ़ता लाने का प्रयत्न करती है। उसे अपने पति और बेटे का बेरोजगार होना बिल्कुल पसंद नहीं है। उसकी अपने पति से बिल्कुल नहीं बनती। वह अपने जीवन में एक पूर्ण पुरुष की तलाश करने का प्रयत्न करती है। वह इस तलाश के कारण जुनेजा, मनोज, शिवजीत और सिंघानिया जैसे कई पुरुषों के सम्पर्क में आती है। उसकी यह तलाश कभी पूरी नहीं होती है। 'सावित्री महेन्द्र से संतुष्ट नहीं है। उसके और महेन्द्र के बीच यह वैवाहिक संबंध मात्र एक समझौता है। सावित्री जैसी स्त्रियाँ प्रकट रूप से तो पुरुष के पौरुष की अपेक्षा करती हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक व्यावहारिकता के वशीभूत होकर दब्बू किस्म के किसी 'हाँ में हाँ' मिलाने वाले व्यक्ति से विवाह करती है। इस प्रकार के 'अधूरे पुरुष' के साथ जो विसंगति उत्पन्न होती है, वह है आर्थिक विषमता। आर्थिक संतुलन बनाए रखने की अभिलाषा, आवश्यकता तथा पर–पुरुष में पूर्णता का अभिकल्पन इस प्रकार की स्त्रियों को विभिन्न पुरुषों के सम्मुख देह को अस्त्र की तरह प्रयुक्त करने का अवसर उपलब्ध कराता है।'[6] अपने पति से खराब सम्बन्ध होने के बावजूद वह उसी से जुड़ने और निभाने को विवश रहती है। यहाँ परिवार और संबंधों में अनिश्चितता, हीनभावना, विवशता और नियति दिखाई पड़ती है। हर मंगल और शनिवार को लड़–झगड़कर घर से निकलने वाला महेन्द्रनाथ वापिस उसी घर में आता है। इसी प्रकार एक बार सावित्री भी घर छोड़कर जगमोहन के साथ जाने को तैयार होती है। उसे जगमोहन स्वीकार नहीं करता। अंततः वह भी अपने घर–परिवार के पास आती है। 'आधे–अधूरे की कथा मनुष्य की यातनापूर्ण नियति में प्रतिबिम्बित होकर स्त्री–पुरुष के संबंधों की असफलता में सिमटते हुए उनके द्वन्द्व को आधार बनाकर उन्हीं के दाम्पत्य जीवन के तनाव में परिणत हो जाती है। यह जिस घर की कहानी है, वहाँ ऊब, घुटन, मानसिक खिंचाव, बर्बरता और नृशंसता के दृश्य पात्रों में अधिक दिखलायी देते हैं। उस घर में जीने वाले परिजनों का जीना दूभर है और उस घर से मुक्ति का कोई उपाय भी नहीं है।'[7] जिस प्रकार बार–बार विभिन्न परिस्थितियाँ बनती है वहाँ यह कह पाना मुश्किल है कि यह परिवार कब तक अपना अस्तित्व बनाए और बचाए रख पाएगा। संयुक्त परिवार के विघटन का परिणाम एकल परिवार के रूप में होता है। इस नाटक में एकल परिवार का विघटन ओर बिखराव दिखाया गया है।

सभी पात्रों का अपना–अपना, अलग–अलग संसार है। किसी भी संबंध में सहजता दिखाई नहीं देती। पति–पत्नी छोटी–छोटी बातों पर झगड़ा कर बैठते हैं, ताने–उलाहने देते हैं। घर की बड़ी बेटी बिन्नी अपनी माँ सावित्री के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। बिन्नी मनोज के साथ विवाह करती है। उसका भी वैवाहिक संबंध और जीवन ठीक नहीं चल रहा है। हांलाकि बिन्नी–मनोज के वैवाहिक संबंध खराब होने के पीछे आर्थिक कारण नहीं होता। वह भी अपने मायके में रह रही है। सावित्री के अपने बेटे अशोक के साथ रिश्ते ठीक नहीं है। अशोक नहीं चाहता कि उसकी माँ अपने बॉस से उसके लिए सिफारिश करे। अशोक दिन भर खाली बैठकर तस्वीरें काटता रहता है। देखा जाए तो पूरे घर का वातावरण दूषित और कसैला रहता है। सभी सदस्य एक–दूसरे से कटे–कटे रहते हैं। घर, घर न रहकर नरक के समान बन जाता है। इस परिवार और घर में प्रेम, शांति, सुरक्षा, संतोष, अपनेपन, प्यार–दुलार और ममता सभी का नितांत अभाव है। इस घर और परिवार की परिस्थितियों के कारण इसे एक 'घर' कहना भी उचित नहीं जान पड़ता। 'इतनी गर्द भरी रहती है हर वक्त इस घर में। पता नहीं कहाँ से चली आती है।'[7] यह धूल अथवा गर्द घर के विषैले वातावरण का प्रतीक है, जो बार–बार सावित्री द्वारा झाड़ने के बाद भी दूर नहीं होती। 'एक तरह से यह नाटक समाज के तथाकथित आधुनिक कहे समझे जाने वाले मध्यवर्गीय परिवार के बिखराव और उसके संत्रास की कहानी है, जिसमें आज के टूटते हुए मनुष्य की उस जिजीविषा का रंग–कल्प है, जो टूटकर अलग भी नहीं हो पाता और जुड़कर जुड़ भी नहीं पाता।'[8] यह टूटन और बिखराव घर और घर में रहने वाले सदस्यों के बीच है।

इस नाटक के सभी पात्र वैयक्तिक और समाजिक दोनों धरातलों पर अभावग्रस्त, असंतुष्ट, परावलम्बी हैं। अशोक का दिशाहीन व्यक्तित्व है। उसके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। वह केवल अपना समय नष्ट कर रहा है। उसके जीवन में भयानक खालीपन है। घर की बड़ी बेटी बिन्नी केवल घर से निकलने के लिए प्रेम और शादी करती है। डॉ. रामजन्म शर्मा के अनुसार– "बड़ी लड़की बिन्नी युवतियों के एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो सम्बन्धों की वास्तविकता को जाने बिना बहकावे में आकर अपने जीवन को नष्ट कर देती है। और सिवाय घुटन के उसके जीवन में कुछ भी शेष नहीं रह जाता।"[9] प्रेम में जिस उदात्तता, गहराई, पवित्रता, विवेक, आत्मीयता और भावनात्मकता की आवश्यकता होती है, वह मनोज और बिन्नी के बीच नहीं है इसीलिए इनका दाम्पत्य जीवन नरक के समान है। घर की छोटी बेटी यौन कुंठाओं से पीड़ित और भयंकर रूप से चिड़चिड़ी है। वह सीधे मुंह किसी से बातचीत नहीं करती। साधारण रूप से बातचीत करने का लहजा भी उसे नहीं आता।

इस नाटक के सभी पात्र अहं की समस्या से ग्रस्त है। महेन्द्रनाथ अपनी आर्थिक स्थिति को संभालने की कोशिश करता है, परन्तु संभाल नहीं पाता। इसी वजह से घर में उसकी कोई इज्जत भी नहीं करता। अपने झूठे अहं की तुष्टि के लिए वह लगातार पत्नी से बहस करता है और उसका स्वभाव उखड़ा होता है। वह अपनी पत्नी को ताने उलाहने देता हुआ कहता है– 'पुरुष एक : आ गयी दफ्तर से? लगता है आज बस जल्दी मिल गई।'[10] इस प्रकार महेन्द्रनाथ एक भी अवसर नहीं छोड़ता, जहाँ वह सावित्री को आघात न पहुँचाए। वहीं दूसरी ओर सावित्री महेन्द्रनाथ को नामुराद मोहरा समझती है। इसी प्रकार बिन्नी भी अपने पति मनोज को किसी न किसी तरह दुख पहुँचाना चाहती है। यहाँ भी पति–पत्नी में अहं की समस्या है। अशोक भी अपनी अहंम्न्यता के कारण सिंघानिया की बात का जवाब तक नहीं देता। सभी पात्र अपनी सीमाओं और कमियों को जानते हुए भी दूसरे के प्रति उग्र और क्रूर हो जाते हैं। अपना दोष दूसरों पर मढ़ते हैं। ओमशिव पुरी के अनुसार "एक दूसरे स्तर पर यह नाट्क–कृति पारिवारिक विघटन की गाथा है। इस अभिशप्त कुटुम्ब का हर

सदस्य एक–दूसरे से कटा हुआ है। घर की त्रासदायक हवा से वे अपने और एक–दूसरे के लिए जहरीले हो रहे हैं।[13] इन सभी समस्याओं के कारण सभी पात्र अनेक विकृतियों से ग्रस्त है। उनमें असंतोष की भावना व्याप्त है।

इन सभी पात्रों के माध्यम से लेखक ने आधुनिक आम आदमी की परवशता, संत्रास, पीड़ा, क्षोभ, भयावहता को रेखांकित किया है। इनमें जीने की इच्छा ही नहीं रह गई है। हीन भावना से ग्रस्त, भविष्य की चिंता से त्रस्त, हठी और चिड़चिड़े रहना, लगातार आवेश और आक्रोश की मनःस्थिति में रहना, असुरक्षा की भावना, असहिष्णु होना, दूसरे का अपमान करने का अवसर तलाशते रहना, दूसरे व्यक्ति अथवा वस्तुओं में आत्मसंतोष की खोज करना आदि अनेक स्थितियों और विकृतियों का चित्रण इस नाटक में किया गया है। 'आधू अधूरे में आज के मनुष्य की अनियंत्रित एवं अंतःहीन यंत्रणाओं के गर्भ में नारी की मुक्ति भावना, वैवाहिक सम्बन्धों की विडम्बना, पुरुष के अधूरेपन तथा विघटनशील जीवन मूल्यों का प्रकर्ष है।'[14] अंततः कहा जा सकता है कि इस नाटक की समस्या वैयक्तिक, सामाजिक और पारिवारिक जीवन और मानवीय मूल्यों का विघटन है, जो प्रत्येक पात्र के जीवन और घटनाओं से रेखांकित हो रहा है। सभी मानवीय और पारिवारिक रिश्ते–नाते भयंकर त्रासदी से गुजर रहे हैं। आपसी प्रेम, सहयोग, समर्पण की भावना का नितांत अभाव घर–परिवार की एक समस्या के रूप में है। वर्तमान समय में मानवीय संबंधों में आपसी सामंजस्य नहीं के बराबर है, जिसका भयावह चित्रण मोहन राकेश ने इस नाटक में किया है।

संदर्भ

1. नाटक रंगमंच और मोहन राकेश, डॉ. सुरेन्द्र यादव, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली–2, प्रथम संस्करण, 2002, पृ. 130
2. आधे अधूरे, मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 1974, पृ. 7
3. वही, पृ. 7–8
4. नाटक रंगमंच और मोहन राकेश, डॉ. सुरेन्द्र यादव, पृ. 134
5. आधे अधूरे, मोहन राकेश, पृ. 16
6. वही, पृ. 16–17
7. नाटक रंगमंच और मोहन राकेश, डॉ. सुरेन्द्र यादव, पृ. 137
8. वही, पृ. 133
9. आधे–अधूरे, मोहन राकेश, पृ. 21
10. नाटक रंगमंच और मोहन राकेश, डॉ. सुरेन्द्र यादव, पृ. 131
11. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक (1947 से 1984 तक), डॉ. रामजन्म शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1984, पृ. 273
12. आधे–अधूरे, मोहन राकेश, पृ. 17
13. वही, पृ. 8
14. नाटक रंगमंच और मोहन राकेश, डॉ. सुरेन्द्र यादव, पृ. 130